प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा के अंतर्गत वैदिक कालीन शिक्षा में गुरू–षिष्य संबंध का अध्ययन

CHANDAN KUMAR

भारतीय समाज में शिक्षा को सदैव महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भारतीय समाज में प्राचीन काल से शिक्षा अथवा विद्या का स्वरूप अत्यंत ज्ञान परक, सुव्यवस्थित और सुनियोजित रहा है, जिसमें व्यक्ति के लौकिक एवं परलौकिक जीवन के लिये विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के निर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों को निष्पादित करने के लिये शिक्षा की नितान्त आवष्यकता थी। मनुष्य एवं समाज का आध्यात्मिक एवं बौद्धिक उत्कर्ष षिक्षा के माध्यम से संभव माना जाता रहा है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा का उदय वेदों से माना जाता है। वेदों को भारतीय जीवन दर्षन का श्रोत माना जाता है। वेदों का मुख्य विषय यज्ञीय विधि विधान है। वैदिक शिक्षा का एकमात्र उद्देष्य छात्रों की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास इस तरह से करना था कि मोक्ष की प्राप्ति की जा सके। वैदिक काल में शिक्षा का उद्देष्य मनुष्य का सर्वागींण विकास करके उसे पूर्ण बनाना था। वैदिक काल में बालक में विद्या आरम्भ की औपचारिक शुरूआत उपनयन संस्कार से होती थी। उस समय उचित समय पर गुरूकुल में जाकर विद्या आरम्भ करने पर बल दिया जाता था। उपनयन के पश्चात बालक को गुरूकुल में रहते हुये वहाँ के नियमों का पालन करना होता था।

आध्यात्मिकता से अनुरंजित वैदिक समाज, भौतिक साधना से दूर, सदैव विद्योपासना में संलग्न रहता था। तद्युगीन शिक्षा की व्यापकता एवं महत्ता पर ऋग्वेद का सरस्वती सूक्त पर्याप्त प्रकाष डालता है।

अर्थात विद्या हमें पवित्र करने वाली है, अन्न देने के कारण अन्न वाली भी है, बुद्धि से होने वाले अनेक कर्मों से धन देने वाली (यह विद्या हमारे) यज्ञ को सफल बनावें। सत्य से होने

वाले कर्मों की प्रेरणा देने वाली, सुमतियों को बनाने वाली यह विद्या देवी (षुभ कर्मों को धारण करने वाली है) हमारे यज्ञ को धारण करती है।

मैक्डॉनेल महोदय ने वैदिक युगीन शिक्षा के उद्देष्यों पर अति सीमित दृष्टिकोण प्रकट करते हुए कहा था कि भारतीय ष्ज्ञिक्ष का उद्देष्य केवल धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्ति के प्रयास में लीन रहना है उनकी दृष्टि में वैदिक युगीन षिक्षा मात्र धार्मिक उद्देष्य से ही अनुप्राणित थी, किन्तु यह एक पक्षी एवं संकीर्ण विचार है। इतिहासकार अल्तेकर के अनुसार वैदिक युगीन शिक्षा के प्रमुख उद्देष्य एवं आदर्ष ईष्वर भक्ति और धार्मिकता की भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक और सामाजिक कर्तव्यों का पालन, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक और सामाजिक कुषलता की उन्नति तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार करना था। वैदिक शिक्षा प्रणाली की विषेषता के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार थे।

1 धार्मिक तत्वों की प्रधानता

2 चरित्र निर्माण पर बल

3 व्यक्तित्व का पूर्ण विकास

4 सामाजिकता की भावना का विकास

5 आदर्ष दिनचर्या पालन पर बल

6 न्याय क्षमता एवं व्यावहारिक ज्ञान

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा के अंतर्गत वैदिक कालीन शिक्षा में गुरू शिष्य संबंध का अध्ययन विषय अध्ययन करने हेतु कुछ मूल उद्देष्यों को ध्यान में रखा गया है। जो निम्नवत है।

1 इस शोध के उद्देष्य प्राचीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में गुरू–शिष्य सम्बन्धों का अनुषीलन करना है।

2 इस शोध के उद्देष्य प्राचीन गुरू–शिष्य सम्बन्धों के प्रति जिज्ञासा की तृप्ति एवं भूत, वर्तमान तथा भविष्य का सम्बन्ध स्थापना करना है।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण

किरण कुमार थपलियाल ने अपनी पुस्तक वैदिक संस्कृति में वैदिक काल के सभी पक्षों का समावेष किया है। उन्होंने इस पुस्तक में वैदिक सामाजिक जीवन के अंतर्गत शिक्षा व्यवस्था की चर्चा की है, जिसके अंतर्गत षिक्षार्थी, पाठ्यक्रम एवं दण्ड व्यवस्था की चर्चा की गई है।

जयषंकर मिश्र ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास में शिक्षा का स्वरूप, विकास एवं विविध आयाम नाम अध्याय के अंतर्गत मनुष्य के जीवन में षिक्षा के महत्व षिक्षा के आरम्भ, समाज में गुरू के स्थान विषयक अनेकानेक बिन्दुओं पर सूक्ष्म चर्चा की गई है। इस पुस्तक में शिष्य के कर्तव्य एवं गुरू के कर्तव्यों एवं दायित्वों पर भी प्रकाष डाला गया है।

शषि अवस्थी ने अपनी पुस्तक ''प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा विषयक अध्याय के अंतर्गत वैदिक षिक्षा पर ही ज्यादा जोर दिया है इस अध्याय में उन्होंने गुरू एवं शिष्यों के संबंध, षिक्षा पद्धति, शिक्षण विषय, नारी षिक्षा एवं षिक्षालयों को अपनी चर्चा को मुख्य रूप से केन्द्रित किया है।

रमन बिहारी लाल ने अपनी पुस्तक शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजषास्त्रीय सिद्धांत में शिक्षा के अर्थ स्वरूप एवं विभिन्न दर्षन के साथ शिक्षा के सम्बन्धों को रेखांकित किया गया है। पुस्तक में शिक्षा पर व्यापक सामग्री बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत की गई है। इसमें उपनिषद दर्शन और शिक्षा नाम अध्याय में उत्तरवैदिक कालीन शैक्षिक परिस्थितियों को प्रस्तुत किया गया है।

कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव ने अपने पुस्तक प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति नामक पुस्तक में प्राचीन भारतीय षिक्षा तथा साहित्य नाम अध्याय में शिक्षा के प्रमुख उद्देष्य पाठ्यक्रम गुरूकुल पद्धथ्त, प्रचीन विष्वविद्यालय नालन्दा, वलभी, विक्रमषिला, गुरू–षिष्य संबंध, षिक्षण शुल्क, परीक्षा तथा उपाधियाँ आदि विषयों पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की गई है।

समस्यायें में वैदिक काल में शिक्षा में बौद्ध काल में षिक्षा नाम अध्यायों में तत्कालीन षिक्षा की विषेषताएँ, कमियों एवं उनकी वर्तमान षिक्षा प्रणाली में उपादेयता को विषेष रूप से रेखांकित किया गया है।

वैजनाथ पुरी ने अपनी पुस्तक भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य में शिक्षा नामक अध्याय के अंतर्गत षिक्षा का उद्देष्य, षिक्षा आरम्भ, अध्ययन विषय, अध्ययन स्थान तथा षिक्षा प्रणाली, गुरू–षिष्य सम्बन्ध, शुल्क, लेखन कला, विद्यार्थी जीवन जैसे विषयों को अपनी चर्चा का आधार बनाया है।

कर्ण सिंह ने अपनी पुस्तक भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास के प्रथम खण्ड– प्राचीन भारत में षिक्षा के अंतर्गत वैदिक काल में षिक्षा एवं बौद्ध काल में षिक्षा नामक अध्यायों के अंतर्गत षिक्षा का अर्थ, षिक्षा के उद्देष्य, षिक्षा की व्यवस्था, समालोचनात्मक मूल्यांकन की चर्चा की।

राम शकल पाण्डेय ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत के षिक्षा मनीषी नाम पुस्तक के वैदिक कालीन षिक्षा मनीषी नाम अध्याय में वैदिक कालीन षिक्षा की विषेषताएँ एवं मनु, कष्यप, वषिष्ठ, विष्वामित्र, अगस्त्य, वृहस्पति, शुक्राचार्य, भारद्वाज, अत्रि, कण्व, भृगु, च्यवन तथा शौनक जैसे ऋषियों की चर्चा की है।

ओम प्रकाष ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास के प्राचीन भारतीय षिक्षा पद्धति नामक अध्याय में षिक्षा व्यवस्था को ऋग्वैदिक काल, उत्तरवैदिक काल, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति ऐतिहासिक काल पूर्वार्द्ध,

उत्तरार्द्ध नाम उपखण्डों में विभाजित कर शिक्षा प्रणाली का विकास प्रस्तुत किया है।

शेध पत्र में प्रयुक्त पदों की व्याख्या

1 वैदिक काल

प्राचीन भारत के इतिहास में सैंधव सभ्यता के पश्चात् वैदिक काल का समय माना जाता है। इस काल में ऋग्वेद, जयर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद की रचना हुई। प्राचीन भारतीय शिक्षा का उदय वेदों से माना जाता है। इस काल में यज्ञीय विधि–विधानों के बीच षिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया।

2 गुरू–शिष्य संबंध

शैक्षिक व्यवस्था में गुरू–षिष्य सम्बन्ध का महत्वपूर्ण स्थान रहता हैं गुरू एवं षिष्य को षिक्षा व्यवस्था की धुरी माना जाता है। प्राचीन काल में ये संबंध अत्यंत सौहार्दपूर्ण होते थे। इस संबंधों के अभाव में षिक्षा व्यवस्था को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है।

गुरू अथवा शिक्षक

विद्या दान का महत् कार्य तद्युगीन विद्वान एवं चरित्रवान ब्राह्मण सम्पन्न करते थे। ये गुरू ही तद्युगीन शैक्षिक मण्डल के प्राण–तत्व थे। गुरू ही आदर्ष नागरिकों को जनक एवं राष्ट्र के निर्माता माने जाते थे। गुरू के हाथों ही तद्युगीन बालकों, एवं युवकों का भविष्य संवरता था। वस्तुतः ऋग्वैदिक आचार्य दिव्य और अलौकिक ज्ञान के प्रतीक थे। वे व्यक्ति और समाज को षिक्षित नहीं करते थे बल्कि बौद्धिक और आध्यात्मिक ज्ञान में भी परंगत करते थे। अच्छे आचार्य के सम्पर्क से मनुष्य को सच्चे अर्थों में ज्ञान की प्राप्ति होती थी। प्राचीन काल में आचार्य अथवा गुरू के निम्न प्रकार थे।

ये सभी षिक्षक मनीषी वैदिक युगीन षिक्षा प्रणाली को संचालित कर रहे थे। वैदिक कालीन प्रमुख शिक्षा मनीषियों में मनु, कष्यप, वषिष्ठ, विष्वामित्र, अगस्त्य, वृहस्पति, शुक्राचार्य भारद्वाज, अत्रि, कण्व, भृगु, च्यवन तथा शौनिक आदि नाम प्रमुख थे। यदि हम उपनिषद काल के ंपमुख षिक्षकों का उल्लेख करें तो उस युग के प्रमुख षिक्षक–महीदास ऐरतेय, पिप्पलाद, श्वेताष्वतर, कुषीतक, शंडिल्य, सनत कुमार, वामदेव, अष्वपति, केकय, कत्यकाम जाबाल, जनक, अजातषत्रु, याज्ञवल्क्य, उद्दालक आरूणि, श्वेतकेतु, गार्गी वाचक्नवी तथा मैत्रेयी आदि थे।

गुरू के गुण

वैदिक युगीन गुरू के लिए यह अनिवार्य समझा जाता था कि वह अपनी विद्वता में असाधारण हो। वे ज्ञानैष्वर्य के सप्तद्वार जानने वाले एवं उन्हें भेदने वाले होते थे। इसीलिए गुरू का श्रोत्रिय होना आवष्यक समझा जाता था। गुरू से यह अपेक्षा की जाती थी िकवह विद्वता, वेद ज्ञान एवं रहस्य ज्ञान के स्पष्टीकरण में परंगत हो। वैदिक गुरू से यह आषा की जाती थी शिकवह उत्तम आचरण वाला एवं आदर्ष चरित्र वाला हो, क्योंकि विद्यार्थी गुरू के आचरण का ही अनुषीलन एवं अनगमन किया करते थे।

(i) गुरू बालक का आध्यात्मिक एवं बौद्धिक जनक माना जाता था। अतः गुरू का यह कर्तव्य होता था कि वह शिष्य के अज्ञानांधकार को दूर कर उसमें ज्ञान की अन्तर्ज्योति जलाए।

(ii) विद्यान गुरू का सर्वाधिक पुनीत धर्म माना जाता था। आचार्य विद्यादान के पूर्व मात्र एवं अपात्र पर बहुत विचार करते थे। हीन व्यक्तियों को दी गई विद्या कुकर्मो को बढ़ाने वाली मानी जाती थी।

(iii) शिष्यों को वेदों का गहरा ज्ञान देना षिक्षकों का परम कर्तव्य था कि वे वैदिक ऋचाओं की स्पष्ट व्याख्या करं एवं शिष्यों के समक्ष समस्त रहस्यों को अनावृत करें।

(iv) शिष्यों को पारलौकिक ज्ञान देते हुए मोक्ष के द्वारा से परिचित कराना भी आचार्य का कर्तव्य था। गुरू षिष्य को साधनात्मक प्रक्रिया के द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान में प्रतिष्ठित करता था एवं उनकी मुक्ति का द्वारा खोलता था।

(v) गुरू का यह कर्तव्य था कि वह अषान्त शिष्यों में शान्ति एवं आषा का संचार करे। गुरू का यह पुनीत कर्तव्य था कि षिष्यों के शारीरिक कष्टों को दूर करे। गुरू शिष्य की यथासंभव सहायता भी करते थे।

शिष्य या विद्यार्थी

वैदिक युगीन शिक्षण पद्धति समूह परक न होकर व्यक्तिपरक थी। अतः तद्युगीन प्रत्येक विद्यार्थी पर पृथक रूप से ध्यान दिया जाता था। वैदिक युग में निम्नांकित 6 प्रकार के विद्यार्थी विद्या–प्राप्ति के अधिकारी मानते जाते थे।

1 शिष्य 2 धारणा–शक्ति सम्पन्न व्यक्ति 3 धन देने वाला 4 पुत्र 5 वेदाध्यायी 6 वह जो एक विद्या सीखकर दूसरी विद्या सीखने की भी इच्छा रखता हो।

वैदिक युगीन षिक्षा व्यवस्था में छात्र दो कोटियों में विभाजित थे।

(i) **गृहवासी–** घर में ही ब्राह्मण पिता, बाबा या चाचा से विद्यार्जन करने वाला विद्यार्थी गृहवासी कहलाता था। इस कोटि में पुत्र, पौत्र एवं भतीजे आदि सम्मिलित थे।

(ii) **अन्तेवासी छात्र–** अन्तेवासी वे छात्र थे जो गुरू के आश्रम में वर्षों रहते थे। गुरू गृह में रहने के लिए दूर क्षेत्रों से विद्यार्थी आते थे।

शिष्य के गुण– गुरू आने वाले जिज्ञासु षिष्य की कुछ मास तक परीक्षा लेता था कि वह ज्ञान प्राप्त का अधिकारी है अथवा नहीं। आदर्ष विद्यार्थी होने हेतु निम्नांकित गुणों की अपेक्षा की जाती थी।

सम्पूर्ण वैदिक वाग्मय– रामायण, महाभारत, पुराण स्मृति ग्रंथ, दर्षन, धर्म, ग्रंथ, काव्य, नाटक, व्याकरण तथा ज्योतिष शास्त्र, संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध होकर इनकी महिमा को बढ़ाते हैं, जो भारतीय सभ्यता, संस्कृति की रक्षा करने में पूर्णतः सिद्ध होती है। सुसंस्कृत ज्ञान से ही संस्कारवान समाज का निर्माण होता है। संस्कारों से कायिक, वाचिक, मानसिक पवित्रता के साथ पर्यावरण भी स्वच्छ होता है।

बदलते सामाजिक परिवेष और भारतीय मूल्यों के बीच हमारी षिक्षा व्यवस्था को समावेषी बनाना अत्यावष्यक है। यह समावेषी व्यवस्था भारतीय प्राचीन ज्ञान परंपरा को लिये बिना नहीं चल सकती है, क्योंकि एक तरफ तो हम आधुनिकता के दौर की ओर तेजी से अग्रसर हैं, वहीं हमारी संस्कृति में निहित ज्ञान विज्ञान परंपरा को भूलते जा रहे हैं। इस अंधानुकरण में हमारी वही स्थिति हो चुकी है जैसा कि उपनिषदों में कहा गया है कि यदि दृष्टिहीन को रास्ता दिखाने वाला भी दृष्टिहीन हो तो लक्ष्य की प्राप्ति कठिन हो जाएगा।

भारत वर्ष ज्ञान भूमि से अलंकृत है जो आधुनिक युग के विज्ञान से भी परे है। जो समस्त ज्ञान प्रेमियों के लिए शोध का विषय है। अब समय है भारत के द्वारा विष्व को दिये गये ज्ञान को संजो कर इसका संवर्धन किया जाए और भारत वर्ष के जनता को संस्कृति, पहचान और प्राप्त ज्ञान से जोड़ा जाए। तभी इसकी उपादेयता सिद्ध होगी।

प्राचीन काल की भारतीय ज्ञान परंपराएँ और संस्कृति मानवता को प्रोत्साहित करती रही है। पुराणों में ज्ञान को अप्रतिम माना गया है। भारत में तक्षषिला,

नालंदा, विक्रमषिला, वल्लभी, उज्जयिनी, काषी आदि विष्व प्रसिद्ध षिक्षा एवषोध के प्रमुख केन्द्र थे तथा यहां कई देषों के षिक्षार्थी ज्ञान अर्जन के लिए आते थे। प्राचीन भारतीय ज्ञान विज्ञान की गौरवमयी परंपरा समस्त जगत को आलोकित करने वाली है। संस्कृत भाषा में ज्ञान विज्ञान की महती श्रृंखला है जो वर्तमान वैज्ञानिक जगत के लिए कुतुहल का विषय ही है।

1 विद्यार्थी में धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय–निग्रह, सत्य अक्रोध, पाँच यम तथा पाँच नियम का होना अति आवष्यक था।

2 षिष्य के लिए यह अत्यावष्यक गुण माना था कि वह विद्यार्जन के लिए तीव्र जिज्ञासु हो। जिस प्रकार जंगल में हिरन जल की खोज में घूमता है। उसी प्रकार विद्या प्राप्ति के इच्छुक तरूणों को ज्ञान की खोज में आचार्यश्रमों में पहुंचना चाहिए।

3 षिष्य के लिए अनिवार्य था कि वह विनयषील हो। विनम्र एवं विनयषील षिष्य ही गुरू के प्रति पूर्णतः समर्पित हो सकता है, और ज्ञानोपलब्धि हेतु पूर्ण आत्म्समर्पण अत्यावष्यक है।

4 षिष्य के लिए मृदभाषी होना आवष्यक था। षिष्य से आषा की जाती थी कि वह गुझ को प्रसन्न करने वाली मृदु एवं मधुरवाणी आदरपूर्वक बोले।

5 स्वभाव से स्नेही होना भी षिष्य का परमावष्यक गुण माना जाता था। स्नेह के बंधन से ही षिष्य गुरू को अपनी ओर आकर्षिकतक कर सकता था।

भारतीय ज्ञापन परंपरा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही षिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक,

आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केंद्रित होकर विनम्रता, सत्यता, अनुषासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। वेदों में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया था (ऋग्वेद, 10/71/7)। छात्रों को मानव, प्राणियों एवं प्रकृति के मध्य संतुलन को बनाए रखना सिखाया जाता था। षिक्षण और सीखने के लिए वेद और उपनिषद के सिद्धांतों का अनुपालन जिससे व्यक्ति स्वयं, परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों को पूरा कर सके, इस प्रकार जीवन के सभी रक्ष इस प्रणाली में सम्मिलित थे।

षिक्षा प्रणाली ने सीखने और शारीरिक विकास दोनों पर ध्यान केन्द्रित किया। कर्म वही है जो बंधनों से मुक्त करे और विद्या वही जो मुक्ति का मार्ग दिखाए। इसके अतिरिक्त जो भी कर्म है वह सब निपुणता देने वाले मात्र हैं। षिक्षा के इस संकल्प को भारतीय परंपरा में अंगीकृत कर तदनुरूप ही विष्वविद्यालयों और गुरूकुलों में षिक्षा दी जाती थी। घर, मंदिर, पाठषाला तथा गुरूकुल में संस्कार युक्त स्वदेषी षिक्षा दी जाती थी। उच्च ज्ञान के लिए छात्र विहार और विष्वविद्यालयों में जाते थे तथा षिक्षण अधिकतर मौखिक था, छात्रों को कक्षा में जो विषय पढ़ाया जाता था उसको वो याद कर मनन करते थे।

गुरू षिष्य सम्बन्ध– वैदिक युग में षिष्य को त्रिमूर्धा अथवा माता–पिता गुरू का ज्ञानानुभव रखने वाला कहा जाता था। अतः षिष्य के लिए गुरू का महत्व माता–पिता के तुल्य समझा जाता था। तद्युगीन समाज में यह धारणा व्याप्त थी कि माता शरीर देने के कारण जननी है, पिता पोषण करने के कारण जनक है एवं गुरू मस्तिष्क, चरित्र एवं व्यक्तित्व का निर्माता है अतः वह बालक का आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं मानसिक जनक है। बालक की माता केवल शारीरिक रूप से षिषु को जन्म देती है किन्तु गुरू बालक को मानसिक रूप से नवीन जन्म देता है अथवा सच्चे अर्थों में उसे मानव बनाता है। इसी कारण तरूण षिष्य

अपने गुरू से तेज, वीर्य, ओज, मन्यु एवं धैर्य–षक्ति पाने की कामना एवं अभ्यर्थना करता हुआ दृष्टगत होता है।

प्राचीन काल की शिक्षा प्रणाली ज्ञान, परंपराएं और प्रथाएं मानवता को प्रोत्साहित करती थी। पुराण में ज्ञान को अप्रतिम माना गया है। भारत के तक्षषिला, नालंदा, विक्रमषिला, बल्लभी, उज्जयिनी, काषी आदि विष्व प्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केन्द्र थे तथा यहां कई देषों के षिक्षार्थी ज्ञानार्जन के लिए आते थे। वैदिक काल मं महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रसिद्धि थी जिसमें मैत्रेयी, ऋतम्भरा, अपाला, गार्गी और लोपामुद्रा आदि जैसे नाम प्रमुख थे। बोधायन, कात्यायन, आर्यभठ, चरक, कणाद, वाराहमिहिर, नागार्जुन, अगस्त्य, भर्तृहरि, शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद जैसे अनेकानेक महापुरूषों ने भारत भूमि पर जन्म लेकर अपनी मेधा से विष्व में भारतीय ज्ञान परंपरा के समिद्ध हेतु अतुल्य योगदान दिया है।

प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में राष्ट्रीय षिक्षा नीति 2020 तैयार की गई है। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परंपरा और दर्षन में सदा सर्वोच्य लक्ष्य माना जाता था। प्राचीन भारत में षिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान अर्जन नहीं बल्कि पूर्ण आत्म ज्ञान और मुक्ति के रूप में माना गया था। भारत द्वारा 2015 में अपनाए गए सतत विकास एजेंडा 2030 के लक्ष्य चार में परिलक्षित वैष्विक षिक्षा विकास योजना के अनुसार विष्व में 2030 तक सभी के लिए समावेषी और समान गुवतायुक्त शिक्षा सुनिष्चित करने और जीवन पर्यन्त षिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने का लक्ष्य है। इस हेतु संपूर्ण षिक्षा प्रणाली को समर्थन और अधिगम को बढ़ावा देने के लिए पुनर्गठित करने

की आवष्यकता होगी ताकि सतत विकास के लिए 2030 एजेंडा के सभी महत्वपूर्ण लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

पिता एवं पुत्रवत सम्बन्ध– वैदिक युग में गुरू एवं षिष्य के मध्य पिता एवं पुत्र की भाति सम्बन्ध रहते थे। आश्रम में रहकर षिष्य को अपने गुरू का संरक्षण प्रापत होता था। वस्तुतः गुरू पिता से कहीं अधिक दायित्वों का निर्वहन करते थे। घर में पिता बालक को केवल भौतिक रूप से संरक्षण प्रदान करते थे, किनतु गुरू विद्यार्थियों की भोतिक आवष्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ उनके सर्वांगीण विकास का दायित्व भी निर्वहन करते थे।

संरक्षक एवं संरक्षित का संबंध– गुरू आदर्ष संरक्षक के रूप में अपने विद्यार्थियों की संपूर्ण दिनचर्या का ध्यान रखते थे। गुरू अपने षिष्यों के मैत्री सम्बन्धों, सम्पर्कों एवं आचरण के प्रत्येक पहलू पर तीव्र दृष्टि रखते थे। गुरू–षिष्यों के प्रति केवल कठोर व्यवहार ही नहीं करते थे वरन शिष्यों की सुविधाओं का भी ध्यान रखते थे। गुरू बीमार षिष्यों की पूर्ण सेवा करते थे। इसी प्रकार षिष्य भी अस्वस्थ्य गुरू के प्रति अपना सेवा धर्म निबाहते थे। गुरू अपने षिष्यों की प्रत्येक असुविधा, कष्ट एवं अषान्ति का ध्यान रखते थे। उसी प्रकार गुरू के सभी कष्टों का ध्यान षिष्य रखते थे।

मित्रवत सम्बंध– वैदिक युगीन षिक्षण कुछ इस प्रकार का था कि गुरू एवं षिष्य परस्पर पूर्णतः उन्तमुक्त रहते थे, जिससे गुरू एवं षिष्य के मध्य मित्रवत् सम्बन्ध पनपते थे। मैत्री भाव के कारण ही तद्युगीन षिक्षक अपने गुरूओं से प्रत्येक बात निःसंकोच रूप से कह सकते थे। गुरू भी स्नेह भाव से षिष्यों को विद्यादान देते थे, उनकी असुविधा एवं कष्टों को सुनते थे।

गुरू एवं षिष्य के मध्य जीवनसाथी सम्बन्ध– वैदिक काल में गुरू एवं षिष्य का सम्बन्ध केवल अध्ययन काल तक ही सीमित नहीं रहता था, वरन् गृहस्थाश्रमी बनकर भी शिष्य गुरू के पास दक्षिण सहित भेंट करने आते थे। गुरू भी अपने शिष्यों के गृहों में जाया करता थे। फलतः शिष्य भी जीवन–पर्यन्त विद्यानुरागी बने रहते थे।

निःस्वार्थ सम्बन्ध– तद्युगीन गुरू एवं षिष्य के सम्बन्ध निःस्वार्थ भाव वाले होते थे। गुरू निःस्वार्थ भाव से शिष्यों को ज्ञान प्रदान करते थे और षिष्य उनकी सेवा यिका करते थे। इस अहैतुकी कृपा एवं सेवा में निष्चय ही महान आदर्ष निहित रहता था। षिष्य गुरू की सेवा इस कारण नहीं करता था कि बदले में वह कुछ पा रहा है, वरल वह गुरू को ईष्वर जानकर पूजता था। गुरू एवं शिष्य के ये अहैतुकी सम्बन्ध जीवन पर्यन्त बने रहते थे।

मनु के अनुसार द्विज बालक के दो जन्म होते हैं, इसी से उसे द्विज कहा जाता है। पहला जन्म माता के गर्भ से और दूसरा जन्म उपनयन संस्कार से होता है। द्वितीय जन्म ब्रह्म अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति के लिए होता है और इस द्वितीय जन्म में उसकी माता गायत्री होती है और पिता आचार्य होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 अल्तेकर, ए0एस0, प्राचीन भारतीय षिक्षा पद्धति, मनोहर प्रकाषन, वाराणसी, 1979–1980।

2 ओम प्रकाष, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विष्व प्रकाषन, नई दिल्ली– 2001।

3 कौल, लोकेष, शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, विकास पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, 2004।

4 गुप्त, नत्थूलाल, मूल्यपरक षिक्षा और समाज (सिद्धांत, प्रयोग एवं प्रविधि), नमन प्रकाषन, नई दिल्ली, 2001।

5 गुप्ता, एस0पी0, भारतीय षिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1998।

6 पाण्डेय रामषकलः प्राचीन भारत के षिक्षा मनीषी, शारदा पुस्तक भवन, पुरी, वैजनाथ, भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य, सुलभ प्रकाषन, लखनऊ, 1996।

7 मिश्र, जयषंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1999।

8 लाल, रमन बिहार, षिक्षा के दार्षनिक एवं समाजषास्त्रीय सिद्धांत, रस्तोगी पब्लिकेषन, मेरठ, 2004।

9 थपलियाल, किरण कुमार, वैदिक संसकृति अभिव्यक्ति प्रकाषन, इलाहाबाद, 2006।

10 सिंह, कर्ण, भारतीय षिक्षा का ऐतिहासिक विकास, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा, 2004।

11 श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र प्राचीन भारत का इतिहास तााि संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2004।